



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(3): 01-06
www.allresearchjournal.com
Received: 01-01-2021
Accepted: 03-02-2021

रोशन कुमार
शोधार्थी, स्नाकोत्तर हिन्दी
विभाग, वीर कुवँ सिंह
विश्वविद्यालय आरा,
बिहार, भारत

International Journal of Applied Research

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि और उनका नाट्यशास्त्र

रोशन कुमार

सारांश

नाट्य कला पर प्राचीन भारतीय ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' है जो अपनी विचारों की व्यापकता के साथ - साथ समग्रता से परिपूर्ण है। इस पुस्तक में न केवल नाट्य-कला पर विचार किया गया है बल्कि उसके आनुषांगिक विषयों जैसे काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं पर भी विचार किया गया है। वर्तमान में उपलब्ध नाट्यशास्त्र में छत्तीस अध्याय तथा छह हजार श्लोक हैं।

पहले अध्याय में इस ग्रंथ की उत्पत्ति कैसे हुई का वर्णन है। दूसरे अध्याय में नाट्यशालाएं बनाने की विधियों का वर्णन है। तीसरे अध्याय में रंगमंच के पैंतालीस देवताओं की चर्चा है। चौथे अध्याय का संबंध नृत्य शिक्षा से है। पाँचवे अध्याय में पूर्वरंग के विधान का विस्तार से विवेचन किया है। छठवें अध्याय में रस की चर्चा की गई है। सातवें अध्याय में भावों की चर्चा की गई है। आठवें से सत्ताईसवें अध्याय तक अभिनय तथा उससे संबंधित बातों का वर्णन होता है। अट्ठाईसवें से चौतीसवें अध्याय तक संगीतशास्त्र के विषय में वर्णन किया गया है। पैंतीसवें अध्याय में मंच पर सामने तथा नेपथ्य में कार्य करने वाले का वर्णन है। छत्तीसवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है।

कूटशब्द: नाटक, भरतमुनि, नाट्यशास्त्र

प्रस्तावना

कला का उत्कृष्ट रूप काव्य है और उत्कृष्टतम रूप नाटक। नाट्य कला पर प्राचीन भारतीय ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' है जो अपनी विचारों की व्यापकता के साथ- साथ समग्रता से परिपूर्ण है। भारतीय नाट्यकला पर विचार करते समय 'नाट्यशास्त्र' हमेशा सामने आ जाता है। इस पुस्तक में न केवल नाट्य कला पर विचार किया गया है बल्कि उसके आनुषांगिक विषयों जैसे काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं पर भी विचार किया गया है।

Corresponding Author:

रोशन कुमार
शोधार्थी, स्नाकोत्तर हिन्दी
विभाग, वीर कुवँ सिंह
विश्वविद्यालय आरा,
बिहार, भारत

ललित कलाओं का विश्वकोश इस ग्रंथ ने भारत की उदात्त कला चेतना को अनुप्रमाणित किया है। वर्तमान में उपलब्ध नाट्यशास्त्र में छतीस अध्याय तथा छह हजार श्लोक हैं।

पहले अध्याय में ग्रंथकार ने सबसे पहले भगवान शिव की स्तुति की गई है। उसके बाद वे बताते हैं कि इस ग्रंथ की उत्पत्ति कैसे हुई। उन्होंने बताया कि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा जी ने चारों वेदों और चारों उपवेदों का ध्यान करके सामग्री ली और पंचमदेव के रूप में नाट्यदेव की सृष्टि की। दूसरे अध्याय में ग्रंथकार ने तीन प्रकार के प्रेक्षागृह के बारे में तथा नाट्यशालाएं बनाने का विधान विस्तार से समझाते हैं।

तीसरे अध्याय में वे रंगमंच के पैतालीस देवताओं की चर्चा करते हैं। देवताओं की पूजन सामग्री और विधि विधान पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। नाट्यशाला की प्रतिष्ठा के लिए अन्य निर्देश भी देते हैं।

चौथे अध्याय का संबंध नृत्य शिक्षा से है। वह बताते हैं कि हमने एक बार ब्रह्माजी के आदेश पर भगवान शंकर के सामने 'त्रिपुरदाह' और 'अमृतमंथन' नामक दो प्रदर्शन प्रस्तुत किए थे। शंकरजी ने देखकर कहा कि ये प्रयोग शुद्ध हैं इन्हें चित्र प्रयोग बनाना है तो इनमें नृत्य सम्मिलित करों। भगवान ने अपने प्रिय शिष्य तण्डु को निर्देश दिया। उन्होंने हमको नृत्य की शिक्षा दी। नृत्य शिक्षा हेतु हमें सबसे पहले एक सौ आठ मुद्राओं का अभ्यास कराया गया। इन्हें शास्त्र में 'करण' कहा गया। कारणों के संयोग से 'अगहार' बनते हैं। हमें बाद में बतीस अगहार सिखाए गए। इस प्रकार हमने नृत और नृत्य की शिक्षा लेकर उसे नाट्य में जोड़ा।

पाँचवे अध्याय में पूर्वरंग के विधान का विस्तार से विवेचन किया है। पूर्वरंग प्रदर्शन से पूर्व तथा प्रदर्शन के आरंभ की क्रियाओं का व्यौरा प्रस्तुत करता है। वाद्य-वादकों तथा गायक-गायिकाओं के

बैठने का स्थान मंच के किस ओर तथा आगे-पीछे किस क्रम में बैठना चाहिए। वाद्यों को मिलाने का क्रम क्या होना चाहिए। प्रदर्शन प्रारंभ करते समय किस विधान से तथा किन पात्रों से मंच पर मंगलाचरण कराना चाहिए। नर्तकी को पुष्पाजंलि के साथ मंच पर किस प्रकार नृत्य करना चाहिए। नृत्य के साथ गीत मिलाकर उसे नृत्य कैसे और कब बनाना चाहिए। विदूषक आदि को मंच पर कब और किस प्रकार आकर नाटक के कथानक की भूमिका बाँधनी चाहिए आदि का विवरण इसमें दिया गया है।

छठवें अध्याय में रस की चर्चा करता है। वे नाटक में श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भूत नामक आठ रस बताते हैं। रसों के देवता का परिचय देते हैं। रसों के रंग बताते हैं। प्रत्येक रस के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। उस रस से संबंधित उसके छोटे से छोटे अंग का विवेचन करते हैं और बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से यह बताते हैं कि रस मानसिक आनंद देने वाली वस्तु है। रसों के भावों का संबंधों स्पष्ट किए हैं और रस तथा भावों के परस्पर संबंध से रसानुभूति की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है।

सातवें अध्याय में भावों की चर्चा की गई है। इसमें भाव, विभाव, स्थायी तथा संचारी या व्याभिचारी भावों का विस्तृत विवेचन तथा आठ प्रकार के सात्त्विक भावों का विवरण दिया गया है।

आठवें अध्याय से अभिनय वर्णन आरंभ होता है। इसमें अभिनय के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक भेद बतलाकर आंगिक अभिनय का सांगोपांग वर्णन किया है।

नवें अध्याय में आंगिक अभिनय के क्रम को और आगे बढ़ाते हुए हस्त, कटि, पाद आदि शारीरिक अंगों का अभिनय विस्तार से बताया गया है। वे चौंसठ प्रकार के हाथों की मुद्राएँ बताते हैं। हाथों की मुद्राओं में वे एक हाथ की चौबीस मुद्राएँ, दोनों

हाथों की तेरह मुद्राएँ तथा नृत्यहस्त की सत्ताईस मुद्राएँ बताते हैं।

दसवें अध्याय में वक्ष, कटि तथा शरीर के अन्य भागों के परिचालनजन्य पाँच प्रकारों का विवरण देकर उनके विभिन्न अवसरों पर किये जाने वाले अभिनय प्रयोग बतलाते हैं।

ग्राहरहवें अध्याय में वे चारियों के बारे में बताते हैं। मंच पर विशेष प्रकार से संगीत और ताल के साथ चलने की क्रिया का नाम चारी है। वे सोलह प्रकार के आकाशचारियों तथा सोलह प्रकार की भूमिचारियों का विस्तार से वर्णन करते हैं।

बारहवें अध्याय में मण्डलों का लक्षण, संख्या तथा प्रयोग का वर्णन किया गया है।

तेरहवें अध्याय में गति प्रचार का निरूपण है। इसमें रसादि के अवसरों एवं अवस्थाओं के अनुकूल पात्रों की गति विवरण बताए गए हैं। इसमें देव, राजाओं, मध्यवर्ग के स्त्री पुरुषों के लोगों की गति में लगने वाला समय; रौद्र, वीभत्स, वीर आदि रसों को प्रस्तुत करते समय की भंगिमाओं का वर्णन करते हैं। संन्यासी, मदमत तथा उन्मत पात्रों के परिचालन के प्रकार तथा गतियों के अभिनय करने का वर्णन किया गया है।

चौदहवें अध्याय में रंगमंच पर विद्यमान गृह, उपवन, वन, जल, स्थल आदि प्रदेश को संकेतित करने के निश्चय, समय के अंगानुसारी विभाजन तथा एक वर्ष या मास में घटित घटनाओं के लिए नये अंक की योजना, देश, वेषभूषा आदि पर निर्भर चार प्रकार की प्रवृत्तियों का निरूपण है।

पन्द्रहवें अध्याय का शीर्षक वागभिन्य है। इसमें वाणी के अभिनय से संबंधित छंद विधान पर प्रकाश डाला गया है।

सोलहवें अध्याय में इसी क्रम में आगे बढ़कर वाचिकाभिनय में उपयोगी वृत्तों का सोलहरण निरूपण है। अन्त में सम तथा विषम वृत्त बतलाकर आर्या के प्रभेदों को बताया गया है।

सत्तरहवें अध्याय में अलंकार लक्षण का निरूपण है। इसमें ग्रंथकार ने काव्य के विभिन्न अंगों का विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत छतीस लक्षणों का विवरण दिया गया है। रसों के अनुकूल काव्यरचना के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। अन्त में रचनाकारों को निर्देश दिया गया है कि नाटक के कथानक में मृदु और ललित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ताकि सबकी समझ में सरलता से आ जाए और दर्शक उसका आनंद ले सके।

अट्ठारहवें अध्याय में भाषा-लक्षण का विवरण देते हुए संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश या देशी शब्द रूपों के उच्चारण भेद द्वारा होने वाले परिवर्तनों का विवरण देकर भाषा एवं विभाषाओं का वर्णन दिया गया है। काकु भेद को समझाते हुए रसों में सात स्वरों का प्रयोग समझा है। अन्त में ध्वनि के अलंकार बताये हैं जिनसे बोलने में सुन्दरता आती है। इसी प्रसंग में विरामादि के स्थान भी समझाए हैं।

उन्नीसवें अध्याय में उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग के पात्रों के संबोधन करने की विविध प्रणालियों का निरूपण है। इसके अतिरिक्त इन वर्गों के पात्रों के नामकरण के उपाय बतलाते हुए गद्य पाठ्य के गुण; स्वर व्यंजन के उच्चारण स्थान श्वरों के उदात आदि प्रकार, काकुके विभेद तथा स्वरों के उच्च, मंद, दीप्त, भद्र एवं नीच, द्रुत तथा विलम्बित जैसे अलंकारों का विवरण दिया गया है।

बीसवें अध्याय में रूपकों के विभेद बतलाते हुए नाट्यशास्त्र के मुख्य विषय का आरंभ किया है। इसमें दस-रूपकों के लक्षण बतलाते हुए उनके वैशिष्ट को प्रतिपादत किया गया है। इन शैलियों के नाम नाटक प्रकरण समवकार, व्यायोग, डिम, भाण, प्रहसण, ईहामृग तथा वीथी आदि हैं। इनमें किस रूप में कौन सी कथा, कौन सा प्रात्र प्रमुख होते हैं, कौन सी वृत्तियाँ प्रयोग में आती हैं, कौन से रस प्रमुख होते हैं आदि का विस्तार से वर्णन

है। अंक की रचना, अंक की विषयवस्तु, अंक समाप्त करने के नियमों का भी वर्णन किया गया है। अंक परिवर्तन के लिए पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेप बताये गए हैं। प्रवेशक एवं विषकम्भक के प्रयोग के नियम बताये गए हैं। सभी लक्षणों का व्यौरा देते हुए यह बताया गया है कि एक अंक में केवल एक माह की कथा दिखाई जानी चाहिए। वीथी के तेरह अंगों की चर्चा की गई है। इस प्रकार दस और तेरह दोनों मिलाकर प्रस्तुतिकरण की तर्फ़ेस शैलियाँ इस अध्याय में बताई गई हैं।

इक्कीसवें अध्याय में इतिवृत्त रचना के नियमों पर लिखा है। इतिवृत्त का अर्थ है कथानक। इस अध्याय में ग्रंथकार ने कथानक लिखने के नियम बताता है। वे कहते हैं कि कथा में मूल कथा होती है जिसे आधिकारिक कहा जाता है और दूसरी सहायक कथा जिसे प्रासंगिक कहा जाता है। कथा में प्रारंभ से अंत जो कार्य चलता है उसमें पाँच अवस्थाएँ होती हैं। साथ ही कथा को जोड़ने वाली पाँच संधियाँ होती हैं और पाँच अर्थप्रकृति होती हैं। जो कथा उद्देश्यपूर्ण अर्थ को स्पष्ट करती हुई आगे बढ़ती है। इसके बाद वे कथा के प्रसंगों और प्रयोजनों को जोड़ने वाली संदियों के छोटे-छोटे अंगों और अंतरों की व्याख्या करते हैं। संधियों के वे 21 अंग तथा 64 अन्तर बताते हैं। वे इसी अध्याय में विषकम्भ, चूलिका, प्रवेशक, अकावतार, अकमुख आदि के प्रयोग के स्थान बताते हैं। उसके बाद लास्य के गो की चर्चा करते हुए गीत-प्रस्तुति के विधान पर प्रकाश डालता है। अन्त में लोक के अनुसार नाट्य प्रस्तुति के विधान की चर्चा करते हैं।

बाइसवें अध्याय में वृत्तियों की चर्चा की गई है। ये वृत्तियाँ हैं - भारती, सात्वती, कैशिकी तथा आरभटी। वृत्तियों के उत्पत्ति के प्रसंग में विष्णु भगवान के द्वारा मधुकैटभ दैत्यों से युद्ध करने तथा उसमें चारों वृत्तियों के प्रयोग की पौराणिक

कथा को लेकर चारों वेदों से चार वृत्तियों के उत्पन्न होने का विवरण देकर इन वृत्तियों के भेद-प्रभेद तथा लक्षण बतलाकर विभिन्न रसों में योजना का विवरण दिया है।

तर्फ़ेसवें अध्याय में आहार्य अभिनय का वर्णन है। आहार्य अभिनय नेपथ्य या वेषभूषा पर अवलंबित होता है। नेपथ्य के चार प्रकार बतलाए हैं। वह पुष्प और मालाओं के प्रयोग की पाँच विधियाँ बताते हैं। आभूषण के चार भेद करके सैकड़ों प्रकार के आभूषणों के सज्जा विधान परप्रकाश डालता है। मंच पर हल्के और नकली आभूषण धारण करने का निर्देश देते हैं। वस्त्रों के तीन रूप बताते हैं। सात्विक, मध्यम और तड़क भड़क वाले। मुखसज्जा के लिए प्रारंभिक चार रंगों के मिलान से तरह-तरह के मुख लेप बनाने की विधियाँ समझाते हैं। अंग रचना प्रकरण में विविध पात्रों के जातीय रूप (जैसे राजा, शक, यवन, शुद्र आदि) को प्रकट करने के लिए उनके शरीर के अनुरूप रंग बनाना तथा तदनुसार दाढ़ी, मूँछे एवं जटा आदि बनाने की विधियों को बताते हैं।

चौबीसवें अध्याय में सामान्य अभिनय का निरूपण किया गया है। कहने को यह सामान्य अभिनय है किन्तु इसमें भरत ने अभिनय के बारीक से बारीक और कठिन से कठिन पक्ष का विवेचन किया है। अभिनय में मनोयोग का होना सबसे महत्वपूर्ण है। मनोयोग वाला अभिनय को उन्होंने श्रेष्ठ अभिनय कहा है। वे अभिनय को प्रभावशील बनाने के लिए स्त्री और पुरुषों के अभिनय-अलंकारों की चर्चा करता है। स्त्रियों के अलंकार की चर्चा करते हुए कहते हैं कि शरीर में स्वाभाविक रूप से सत्त्व विद्यामान रहता है। वे उसी प्रकार पुरुषों के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए पुरुषों के अलंकार जैसे शोभा, विलास, माधुर्य, स्थिरता गंभीरता उदारता, धैर्य आदि के लक्षण और उनके अभिनय में प्रयोग बताते हैं। बोलने के बारह प्रकारों के निर्देश देते हैं। पाँच प्रकार के तन्मात्रों रूप, रस,

स्पर्श, गंध आदि को व्यक्त करने के नियम बताते हैं। आगे वह स्त्रियों के बाईं प्रकार के शीलों की चर्चा करते हैं जिनसे स्त्रियों के लक्षणों एवं स्वभाव पर प्रकाश डालते हैं। इसी अध्याय में वे कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों के साथ भोग की अनेक विधियों का वर्णन करते हैं। नायिकाओं का अभिनय करने के लिए आठ प्रकार के नायिकाओं के लक्षण बताते हैं। कुलीन स्त्री और वेश्या का भेद समझाते हैं। उनके आचरण एवं व्यवहार के नियम को समझाते हैं। कामातुर स्त्रियों के मनोदशाओं के रूप स्पष्ट करते हैं। दूती के कार्य और लक्षण स्पष्ट करते हैं।

पच्चीसवें अध्याय में वैशिक पुरुष का लक्षण बतलाकर उसके सहजगुणों तथा संपादित गुणों का विस्तार से वर्णन किया है। वैशिक पुरुष के बीस गुण बताए हैं। यदि मनुष्य में ये गुण नहीं हैं तो वह स्त्रियों को वश में नहीं कर सकता। स्त्री के यौवन के पाँच विभिन्न दशाओं का वर्णन किया है। पूरे अध्याय में स्त्री और पुरुष के मध्य घटित होने वाले छोटे से छोटे व्यवहार का विस्तार से विवेचन किया गया है।

छब्बीसवें अध्याय में चित्राभिनय का वर्णन किया गया है। इसमें अभिनय के लिए प्रतीकों की विशद् योजना की है। इसके अंतर्गत आकाश, रात्रि, सांयकाल, अंधकार आदि का प्रदर्शन करने के लिए अभिनयविधि के विवरण देते हुए हर्ष, शोक आदि भाव प्रकट करने की विधियाँ विशिष्ट रूप से निर्दिष्ट की गई हैं।

सत्ताइसवें अध्याय सिद्धिव्यंजक लक्षण है। इसमें नाट्य-प्रदर्शन में होने वाली देवी तथा मानुषी सिद्धि का सांगोपांग निरूपण करते हुए उनमें होने वाले विध्नों का विवरण दिया गया है। इसी प्रसंग में नाटक-प्रदर्शन के निर्णायक या परीक्षकों की विभिन्न श्रेणियों तथा उनकी योग्यता का विस्तार से निरूपण है।

अट्ठाईसवें अध्याय का नाम आतोदय-विधान है। वे आतोदय अर्थात् वाद्य-यंत्रों के बारे में कहते हैं कि वाद्य चार प्रकार के होते हैं-तत्, अवनदध घन तथा सुषिर। तत्वाद्य या तंत्री वाद्य वे होते हैं जिनमें तार या तात आदि से आवाज निकलती है। खाल से मढ़े हुए सारे वाद्य अवनदध कहलाते हैं। धातु से बने वाले वाद्य यंत्र घन कहलाते हैं। फूँक से बजने वाले सारे वाद्य सुषिर कहलाते हैं। स्वरों के सात प्रकार बताए हैं। इसके अतिरिक्त स्वर ग्राम, मूँछना, श्रुतियों तथा जातियों का विशद् विवरण प्रस्तुत किया है।

उन्तीसवें अध्याय का नाम रस जाति लक्षण है। इसमें वह रस के अनुकूल गान्धर्व की जातियों का विवेचन करता है। गान्धर्व के वर्ण और अलंकारों पर विस्तार से प्रकाश डालता है।

तीसवें अध्याय का नाम सुषिर लक्षण है। इसमें सुषिर अर्थात् फूँकों से बजने वाले वाद्य यंत्रों के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। वंशी की रचना एवं उसे बजाने के लिए अंगुली-संचालन की विधियाँ बताते हैं तथा वंशी से निकलने वाले स्वरों का विधान स्पष्ट करता है।

इकतीसवें अध्याय का नाम तालाध्याय है। इसमें वे ताल से संबंधित छोटे से छोटे अंग पर पर प्रकाश डालते हैं। ताल और लय का संबंध स्पष्ट करते हैं। कण्डिका का स्वरूप बताते हुए गीतों के अंग रूप में ताल का प्रयोग स्पष्ट करते हैं।

बतीसवें अध्याय का नाम ध्रवाध्याय है। प्रारंभ में ध्रुवा की जातियों का स्वरूप स्पष्ट करने के बाद एक सौ दस प्रकार के ध्रुवा-छंदों के नाम, उनकी रचना के नियम तथा प्रत्येक छंद का शौरसेनी में उदाहरण प्रस्तुत किया है।

तैतीसवें अध्याय का नाम गुण-दोष-विचार है। इसमें गायक गायिकाओं तथा वाद्य-वादकों के गुण-दोषों का विवेचन किया गया है।

चौतीसवें अध्याय का नाम पुष्कराध्याय है। अवनदध अर्थात् खाल से बजने वाले वाद्य के

भेदों का वर्णन है तथा त्रिपुष्कर विधि का विवेचन किया गया है। सुन्दर वाद्य के लक्षण बताने के बाद वाद्य पर चढ़ाने के लिए अच्छे और खराब चमड़े के लक्षण बताये हैं। अन्त में अवनदध वाद्य बजाने वाले के गुण बताए हैं।

पैंतीसवें अध्याय का नाम भूमिका पात्र विकल्पाध्याय है। इसमें नाट्यमंडली के सदस्यों का विभाजन करते समय सकी व्यक्तिगत विशेषताओं को दर्शया गया है। इसमें मंच पर सामने तथा नेपथ्य में कार्य करने वाले लगभग बीस कर्मियों के परिचय दिए गए हैं।

छत्तीसवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है। इस अध्याय में मुनियों ने भरतमुनि से पृथ्वी पर नाट्य के अवतरित होने के विषय में पुनः जिजासा की? मुनि ने इसके उत्तर में दो आख्यान प्रस्तुत किए हैं। प्रथम में भरतपुत्रों के द्वारा मुनिजनों के उपहासकारी नाट्य से रुष्ट होकर क्रृष्णियों से शप्त हो जाने की कथा तथा दूसरे में इसी कारण राजा नहुष की प्रार्थना पर स्वर्गस्थ नाट्य की भूतल पर अवतरित होने की कथा है।

‘नाट्यशास्त्र’ के जिन संस्करणों में सैतीस अध्याय मिलते हैं उनमें नहुष की कथा अर्थात् द्वितीय आख्यान सैतीसवे अध्याय में रखा गया है।

‘नाट्यशास्त्र’ के प्रथम पाँच अध्यायों और अंतिम अध्याय (अगर नाट्यशास्त्र में छत्तीस अध्याय मानें तो अंतिम अध्याय और अगर सैंतीस अध्याय मानें तो अंतिम दो अध्याय) की लेखन शैली अलग तरह की है। इन अध्ययों में ग्रंथ का धार्मिक दृष्टि से महत्व स्थापित करता है। इसके अलावा ग्रंथ में जितनी बिषय-वस्तु बचती है वह विशुद्ध रूप से कला और काव्य के तकनीक से संबंधित है। आठवें अध्याय से अभिनय के बारे में बात शुरू होती है। अट्ठार्हसवें अध्याय से लेकर चौतीसवें अध्याय तक संगीतशास्त्र का बिषय प्रतिपादित किया गया है।

‘नाट्यशास्त्र’ के उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र अपने विस्तरित क्षेत्र के कारण अपने अपने बाद रचित सभी नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ में विशिष्ट बना है।

सहायक ग्रंथ सूची

- बाबू लाल शुक्लशास्त्री, हिन्दी नाट्य साहित्य
- डॉ. व्रजवल्लभ मिश्र, भरत और उनका नाट्यशास्त्र
- डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य
- Radhavallabh tripathi (Edited) Natyasatra and the Indian Dramatic tradition